द्वितीय प्रश्न-पत्र

हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

इकाई-1 – हिन्दी भाषा - हिन्दी की मूल आकर भाषाएँ - संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश का परिचय और विशेषताएँ। हिन्दी का उद्भव और विकास। हिन्दी और उसकी बोलियों का सामान्य परिचय।

इकाई-2 – हिन्दी भाषा के विविध रूप - बोलचाल की भाषा, राजभाषा, रचनात्मक भाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा, संचार भाषा। हिन्दी का शब्द भंडार - तत्सम, तद्भव, देशज, आगत शब्दावली। देवनागरी लिपि - उद्भव विकास व मानक रूप

इकाई-3 – हिन्दी साहित्य का इतिहास- आदिकाल – सीमांकन व नामकरण, परिस्थितियें आदिकालीन साहित्य का वर्गीकरण, प्रमुख काव्यधाराओं का वर्गीकरण, परिचय एवं वैशिष्ट्य, विशिष्ट रचनाकारों का सामान्य परिचय।

इकाई-4 – भक्तिकाल - सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, पृष्ठभूमि, संतकाव्य और रामभक्ति काव्यधाराओं की प्रमुख काव्य प्रवृत्तियाँ, कृष्णभक्ति काव्य और विशिष्ट रचनाकारों का सामान्य परिचय।
रीतिकाल – नामकरण तथा रीतिकालिन काव्य की प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएं और प्रमुख रचनाकार।

इकाई-5 – आधुनिक काल – पृष्ठभूमि, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नई कविता की काव्य प्रवृत्तियाँ एवं विशेषताएँ।
प्रमुख गद्य विधाओं - निबन्ध, नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी एवं आलोचना का उद्भव एवं विकास।

Unit - 1 हिन्दी का उद्भव और विकास

मध्ययुगीन भारतीय आर्य भाषाओं का काल दसवीं सदी के आस-पास समाप्त होता है और वहीं से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का क्रम प्रारम्भ होता है अतः हिन्दी सहित समस्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की उत्पत्ति का काल 10 वीं सदी के आस-पास माना जाता है यद्यपि इन भाषाओं के विकास के सूत्र तो दो-तीन शताब्दी पूर्व से ही मिलने लगते हैं पर 10 वीं सदी के पूर्व की यह अवधी भाषा का संक्रमण काल रही है जिसमें मध्यकालिन भाषा अपभ्रंश के रास के चिन्ह एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के विकास के चिन्ह एक साथ दिखाई देते हैं। अतः इस संक्रमण व सन्धि काल के पश्चात् 10 वीं सदी के आस-पास से हिन्दी का विकास स्वीकार किया जाता है।

हिन्दी के विकास की तीन स्पष्ट अवस्थाएँ हैं जिन्हें तीन कालों में बाँटा जाता है :-

आदिकाल (1000 ई० से 1500 ई०)
मध्यकाल (1500 ई० से 1850 ई०)
आधुनिक काल (1850 ई० से अब तक)

आदिकाल :- यह युग राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त उथल-पुथल का युग था अतः इस काल को भाषा के विकास का उपयुक्त समय स्वीकार नहीं किया जाता। इस काल में हिन्दी भाषा के 3 रूप मिलते हैं :-

अपभ्रंश भाषा ② पिंगल (ब्रज भाषा) ③ डिंगल (राजस्थानी भाषा)

अपभ्रंश के समाणित रूप जिसमें सिद्धों, नाथों एवं जैनियों का धार्मिक साहित्य उपलब्ध होता है। अपभ्रंश भाष रूप है। स्थानीय भाषा एवं मध्यप्रदेश अथवा ब्रजभूमि की भाषा के मिश्रित रूप का नाम है पिंगल। पिंगल इस समय के साहित्य में प्रयुक्त होने वाले मुख्य भाषा रूप है। डिंगल भाषा का वह रूप है जो अपभ्रंश एवं राजस्थानी के मिश्रण से बना है। चारणों की वीरगाथात्मक रचनाओं की भाषा डिंगल ही है जिसमें रासो ग्रन्थ प्रमुख हैं।

इन भाषा रूपों के अतिरिक्त 2 भाषा रूप और दृष्टिगोचर

होते हैं :—
अरबी, फारसी की अपेक्षाकृत अधिक प्रधानता से युक्त भाषा रूप जिसे पुरानी हिन्दी या हिन्दवी कहा जाता है।
पूर्व में विकसित पुरानी मैथिली का जो विद्यापति की रचनाओं की भाषा है।

हिन्दी की प्रारम्भिक अवस्था होने के कारण इस काल में विभिन्न बोलियों एवं उपबोलियों, उपभाषाओं का अन्तर स्पष्ट परिलक्षित नहीं होता। प्रत्येक भाषा रूप में अन्य रूपों का मिश्रण दिखाई पड़ता है। इस काल की हिन्दी भाषा में अपभ्रंश की समस्त ध्वनियाँ आ गई हैं। इनके साथ ही ऐ, औ जैसी संयुक्त ध्वनियाँ भी अपना अलग स्वरूप धारण कर चुकी थी। अपभ्रंश में तद्भव शब्दों की संख्या अधिक थी। आदि-कालीन हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति मुखर है। मुसलमानों के साथ बढ़ते सम्पर्क के फलस्वरूप इस काल की हिन्दी में अरबी, फारसी, तुर्की आदि भाषाओं के अनेक शब्द आ गए। आज इस काल की प्राप्त साहित्यिक रचनाओं में उस युग की भाषा का स्वरूप सुरक्षित तो अवश्य है पर उसमें मिश्रण बहुत कम है अतः उस काल की शुद्ध भाषा इस रूप खोज पाना दुष्कर कार्य है।

मध्यकाल :— हिन्दी के विकास का मध्यकाल मुगलों के शासन का काल था। इस समय देश में अपेक्षाकृत शान्ति का वातावरण था फलस्वरूप देशी भाषाओं को विकसित होने का अवसर मिला। इस काल में पद्यात्मक साहित्य की रचना अधिक हुई। काव्य ग्रन्थों की टीकाओं में यत्र-तत्र गद्य की झलक मिलती है। इस काल में भाषा के दो मुख्य रूप विकसित हुए- ब्रज एवं अवधी। ब्रज शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित रूप है जो हिन्दी क्षेत्र के पश्चिमी हिस्से में व्यवहृत होती है। अवधी अर्द्धमागधी अपभ्रंश से विकसित रूप है। यह हिन्दी क्षेत्र के पूर्वी हिस्से में प्रचलित है। अवधी के विकास और उसे सर्वाधिक महत्व देने का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास एवं उनकी महत्वपूर्ण कृति रामचरितमानस को है। तुलसीदास के अतिरिक्त सूफी कवियों - कुतुबन, मंझन, जायसी ने भी इस भाषा को अपनी

रचनाओं की भाषा बनाया। ब्रज के विकास में अष्टछाप कवियों - सूरदास, नन्द दास आदि ने प्रमुख भूमिका है अवधी का प्रसार जहाँ मध्यकाल के मध्य तक ही सीमित रहा वही ब्रज का प्रसार न केवल पाश्चिम में ही हुआ अपितु वह सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र के साहित्य का माध्यम बन गई। ब्रज का प्रयोग न केवल मध्यकाल में ही रहा अपितु वह आधुनिक काल तक प्रचलित रहा इन दो रूपों के साथ खड़ी बोली पर आधारित दाक्खिनी का रूप भी विकसित हुआ। दाक्खिनी का विकास दाक्षिण में हुआ जो 18वीं सदी के आस-पास उत्तर भारत में उर्दू के नाम से विकसित हुई।

इस काल के शासकों की ~~भाष~~ दरबारी भाषा फारसी होने के कारण फारसी का प्रचार-प्रसार बढ़ा और इसके कारण अनेक फारसी, अरबी, तुर्की शब्द हिन्दी में आ गए इसी कारण अरबी, फारसी से प्रभावित क, ख, ग, ज, फ ध्वनियों का भी समावेश हिन्दी में हुआ। धार्मिक साहित्य की प्रधानता का युग होने के कारण इस काल की भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग भी बढ़ा। दूसरी तरफ इसी काल में अंग्रेजी, फ्रांसीसी आदि यूरोपीय भाषा भाषियों के सम्पर्क में आने के कारण इन भाषाओं के अनेक शब्दों का भी समावेश हिन्दी में प्रारम्भ हुआ।

आधुनिककाल :— यद्यपि हिन्दी भाषा का आधुनिक काल 18 वीं सदी के अन्त और 19वीं सदी के प्रारम्भ के आस-पास से उस समय शुरु हो जाता है जब अंग्रेजों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार एवं शासन के लिए जनसाधारण की भाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के प्रयत्न स्वरूप फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की किन्तु 1800 से 1850 ई० तक का काल संक्रान्तिकाल था इस अवधी में हिन्दी भाषा का स्वरूप पूर्णतया सामने नहीं आ पाया अपितु यह काल स्वरूप निर्धारण के प्रयास का कालमात्र रह गया साथ ही हिन्दी के स्वरूप की अनेक दिशाएँ सामने आई जिनमें हिन्दी, उर्दू, मिश्रित रूप, उर्दू प्रधान हिन्दी रूप एवं संस्कृत शब्दों से युक्त शुद्ध हिन्दी रूप प्रमुख हैं। 1850 के आस-पास तक हिन्दी का स्वरूप और उस भाषा की दिशा पूर्णतया निश्चित हो गई आगे चलकर इसी दिशा के आधार पर भारतेन्दु बाबु एवं उनके मण्डल के रचनाकारों, महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके अनुवर्ती लेखकों ने

एक नई भाषा को गद्य और पद्य की भाषा बनाया जो खड़ी बोली हिन्दी के नाम से विख्यात हुई यह हिन्दी खड़ी बोली पर आधारित हुई व उसका यही स्वरूप राष्ट्र भाषा के गौरवमय पद के लिए स्वीकृत हुआ।

हिन्दी के इस स्वरूप के अतिरिक्त अनेक सहभाषाओं उनकी उपबोलियों व बोलियों का विकास भी इसी युग में हुआ। इस काल की भाषा में तत्सम शब्दों की संख्या बहुत बढ़ गई ज्ञान-विज्ञान के लिए निर्मित नए पारिभाषिक शब्दों की मूल आधार संस्कृत शब्दावली ही है। हिन्दी ने अन्य भारतीय आर्यभाषाओं एवं अनेतर भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किए हैं। अंग्रेजी के अज्ञात शब्दों की संख्या तो बहुत अधिक है इसके अतिरिक्त समर्थ साहित्यकारों ने अनेक शब्दों का निर्माण किया। पुराने शब्दों को नई और व्यापक अर्थवत्ता प्रदान की अंग्रेजी के प्रभाव 'ऑ' जैसी नवीन ध्वनियों का भी आविर्भाव हो रहा है। भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, प्रसाद पंथ निराला, महादेवी वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, फणीश्वरनाथ रेणु, मुक्तिबोध, अज्ञेय, दिनकर आदि इस युग के कुछ समर्थ साहित्यकार हैं। साहित्य की समस्त विधाओं का इस युग में पर्याप्त विकास हुआ है इतना ही नहीं अपनी उत्तरोत्तर वृद्धि एवं नूतन अभिव्यंजना शक्ति के कारण आज हिन्दी भारत में ही नहीं अपितु अन्य देशों में भी पर्याप्त मात्रा में ख्याति प्राप्त कर रही है। अनेकानेक राष्ट्रों के विश्व विद्यालयों की उच्च कक्षाओं में इसी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन अध्यापन हो रहा है। आज हिन्दी में विविध प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का भी निर्माण हुआ है जिनका प्रयोग आधुनिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे- गणित, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, प्राणी विज्ञान, मनोविज्ञान, भौतिकी, इंजीनियरिंग आदि में होता है इस प्रकार हिन्दी का बहुमुखी विकास आज हो रहा है।

हिन्दी की उत्पत्ति :- हिन्दी की उत्पत्ति के पश्चात् हम हिन्दी की मूल आकर भाषाओं पर विचार करेंगे वो भाषाएँ जो हिन्दी की आधार हैं कि दृष्टि से संस्कृत का स्थान सबसे पहले आता है। संस्कृत के

हमें दो रूप मिलते हैं :-
वैदिक संस्कृत ② लौकिक संस्कृत

वैदिक संस्कृत :- वेदों की भाषा बोलचाल की भाषा से पृथक आर्यों की पहली साहित्यिक भाषा है। ऋग्वेद में बोलचाल की भाषा से मिश्रित साहित्यिक रूप के दर्शन होते हैं। वैदिक भाषा का काल ईसा पूर्व 1500 से ई. पूर्व 800 अर्थात पाणिनी के काल तक का है। इसे छन्दस् या वैदिक संस्कृत या प्राचीन संस्कृत नाम से भी पुकारा जाता है। वैदिक भाषा में 9 मूल स्वर अ, इ, उ, ऋ, ऌ, आ, ई, ऊ, ॠ तथा चार संयुक्त स्वर ए, ऐ, ओ, औ प्राप्त होते हैं। वैदिक भाषा स्वरा घातु प्रधान है। इसमें शब्दों के उच्चारण की शुद्धता अशुद्धता का मानदंड स्वरों के आरोह, अवरोह को माना गया है। व्यंजन ध्वनियों में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण तथा त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म ये 25 स्पर्श ध्वनियाँ हैं। य, र, ल, व चार अर्द्ध स्वर ध्वनियाँ हैं। श, ष, स तीन ऊष्म ध्वनियाँ। एक महाप्राण ह, एक अनुस्वार ं तथा अघोष ध्वनियाँ विसर्जनीय जीह्वामूलीय और एक उपमानीय कुल 52 व्यंजन थे। वैदिक भाषा के शब्द कई स्वरान्त हैं और कई व्यंजनान्त। व्याकरण की दृष्टि से इसमें 3 लिंग (स्त्री, पुरुष, नपुंसकलिंग) 3 वचन (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन) और 8 कारक हैं। इस प्रकार संयोगात्मकता, स्वराघात और द्रविड़ भाषा के प्रभाव से ऋ वर्ण का ग्रहण यह तीन मुख्य विशेषता वैदिक भाषा की है।

लौकिक संस्कृत :- इसे वैदिक संस्कृत की तुलना में लौकिक संस्कृत कहा जाता है। भाषा के अर्थ में संस्कृत का अर्थ ही होता है- "संस्कार की हुई भाषा"। सुप्रसिद्ध व्याकरण पाणिनी ने ई. पूर्व 400 के आसपास अपने समय के शिष्ट समाज में व्यवहरित भाषा को आदर्श मानकर अपने व्याकरण की रचना की। उन्होंने वैदिक भाषा को छन्दस नाम दिया और अपने व्याकरण में विवेचित भाषा को लोक प्रचलित भाषा कहा। इसका अभिप्राय यह था कि पाणिनी ने छन्दस की भाषा की प्रकृति को दृष्टि में रखते हुए अपने समय में शिष्टजनों के बीच प्रचलित सामान्य बोलचाल की भाषा को ही व्यवस्थित और व्याकरण

विच्छेद करने की चेष्टा की। इस अनुमान का सबसे प्रधान आधार पाणिनि संस्कृत की वैदिक भाषा से भिन्नता है। संस्कृत और वैदिक परस्पर भिन्नता इस प्रकार हैं :—

वैदिक की तुलना में लौकिक संस्कृत में स्वरों की संख्या सीमित है। वैदिक भाषा स्वराघात प्रधान थी जबकि लौकिक संस्कृत बलाघात प्रधान हो गई।

वैदिक ऋ, ॠ, ऌ लेखन में तो रहे हैं। मगर बोलने में इनका उच्चारण।

वैदिक संस्कृत में व्यंजनात शब्दों का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता है जबकि लौकिक संस्कृत में मिलता है।

ए, ओ भाषा में संयुक्त स्वर थे। संस्कृत में मूल स्वर हो गये।

वैदिक संस्कृत में स्वर भक्ति से युक्त रूप मिलते हैं। मगर संस्कृत में यह रूप नहीं हैं।

कुछ ध्वनियों का उच्चारण स्थान भी लौकिक संस्कृत में परिवर्तित हुआ जैसे अन्तर्मूलीय ला संस्कृत में लगभग मूर्द्धन्य हो गया।

इस प्रकार कालगत व्यवधान के कारण विकासित होने वाली भाषा प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर पाणिनी द्वारा भाषा का संस्कार किया गया। किन्तु इस संस्कार के कारण संस्कृत विकासहीन बन गई जिसका प्रयोग लोकजीवन से हटकर केवल साहित्य तक ही रह गया किंतु भाषा का लोक सम्मत रूप लगातार प्रवाहित होता रहा। इस प्रवाह में स्थानिक भिन्नता और नवीन प्रवृत्तियों का समावेश तो हुआ ही उसे साहित्यिक व्याकरणिक आधार भी प्राप्त हो गया इस प्रकार भारतीय भाषाओं के विकास का दूसरा युग प्रारम्भ हुआ जिसे मध्ययुग या प्राकृत युग कहते हैं।

प्राकृत रूप :— प्राकृत की समय सीमा ईसा पूर्व 500 से लेकर 1000 ईस्वी तक मानी जाती है इस काल के तीन उपभेद किए गए हैं—

आदि प्राकृत काल (500 ई. पूर्व से 1000 ईस्वी तक) :— इसके अन्तर्गत मुख्यतः पालि और शिलालेखों की प्राकृत भाषाएँ आती हैं।

मध्य प्राकृत काल (1000 ई. से 500 ईसा पूर्व) :- इसके अन्तर्गत प्राकृत भाषाएँ आती हैं।
तृतीय प्राकृत काल (500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व तक) :- इसके अन्तर्गत अपभ्रंश भाषाएँ आती हैं।

इन तीन कालों की भाषाओं पर विचार करने से पूर्व प्राकृत शब्द के बारे में जानना आवश्यक है। यह विवादास्पद है कि प्राकृत से क्या समझा जाए। इस संबंध में मार्कण्डेय कहते हैं- "संस्कृत प्रकृति या मूल है और उससे उत्पन्न भाषा को प्राकृत कहते हैं।" हेमचन्द्र के अनुसार- प्राकृत प्रकृति संस्कृत से जो आयी है वह प्राकृत है। ऊपर दिए गए प्राकृत के तीन वर्गों का परिचय इस प्रकार है :-

पालि :- पालि के उत्थान का सम्बन्ध मूलतः बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव (उत्पन्न होना) से है। गौतम बुद्ध ने लोकभाषा के जिस रूप में अपने उपदेश दिए उसी के लिए पालि का प्रयोग होता है। पालि का प्रथम प्रयोग बौद्ध ग्रंथ दीप वंश में मिलता है जो चौथी शताब्दी का रचना वहाँ उसका अर्थ है- "बुद्ध वचन"। भाषा के अर्थ में पालि का प्रयोग अत्याधुनिक है और यूरोप के द्वारा हुआ है। पालि शब्द की व्युत्पत्ति अनेक रूपों में दी गई है उनमें से मुख्य ये हैं :

- इसका संबंध संस्कृत के पंक्ति से है। पंक्ति > पन्ति > पट्टि > पल्लि > पालि (विधुशेखर भट्टाचार्य)।
- इसका संबंध प्राकृत से है। प्राकृत > पाकट > पाअड > पाअल > पालि (भण्डारकर)।
- इसका संबंध संस्कृत पर्याय से है। पर्याय > पलियाय > पालियाय > पालि (जगदीश कश्यप)।

इस प्रकार इनमें से भाषा का अर्थ कोई व्युत्पत्ति नहीं देती है इसलिए निश्चित रूप से इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। पालि के सम्बन्ध में अब स्पष्ट रूप से कहा जाता है कि यह बोलचाल की भाषा नहीं थी बल्कि यह अनेक बोलियों के संश्लेष से अस्तित्व में आई थी। किन्तु इसका व्याकरणिक ढाँचा किस बोली पर आधारित था यह विवादास्पद है। परम्परागत धारणा यही है कि बुद्ध ने सर्वप्रथम मगध की जनभाषा 'मागधी' में अपना उपदेश दिया था अतः पालि का मूलाधार मागधी होना चाहिए। बुद्ध ने

अपने को कौशल खलय (कौशल का रहने वाला) का। इस आधार पर राइस डेविस ने पालि को कौशल की भाषा माना है। गिरिनार के अशोकी शिलालेख की भाषा का पालि से अधिक नेकट्य (निकटता) होने के कारण वेस्टर गार्ड, फ्रैंक आदि विद्वान मानते हैं कि यह उज्जैन की भाषा थी। सिल्वा लेवी तथा लुडर्स आदि ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि बुद्ध वचन सर्वप्रथम मगध की किसी बोली में रचित हुए थे और पालि में उसका अनुवाद हुआ था। बाद में पालि का प्रयोग मध्यदेश में लगभग समाप्त हो गया। अब वह केवल विहारों और धर्मस्थानों की भाषा रह गई और दक्षिण के कांचीपुर और तंजोर में इसका प्रयोग होने लगा।

उपर्युक्त मतों से स्पष्ट है कि पालि मध्य देश की ही कोई भाषा थी जिसमें मागधी से पर्याप्त अन्तर था वस्तुतः पालि बुद्ध की मातृ भाषा थी और वह मगध में भी बोली समझी जाती थी। यदि पालि को मध्यदेश की भाषा माना जाए तो मगध भी मध्यदेश की परिधि में ही आता है और एक जनपद की बोली का दूसरे पड़ोसी जनपद या राज्य में समझा जाना बहुत अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि सम्पर्क के कारण यह सम्भव है।

पालि वैदिक संस्कृत की भांति विविध रूपों ~~की भांति~~ वाली स्वच्छन्द प्रवृत्ति की भाषा है फिर भी उसमें पर्याप्त सरलीकरण हुआ है इसमें व्यंजनान्त शब्दों का प्रायः अभाव है सादृश्य के कारण अनेक स्वतन्त्र भिन्न शब्दों के रूप एक हो गए हैं पालि में द्विवचन की प्रायः विरलता है। व्याकरणिक ढांचा संस्कृत की तुलना में सरलीकरण की ओर झुका हुआ है।

(3) प्राकृत :— प्राकृत शब्द या प्राकृत भाषा से क्या अभिप्राय है इसके विषय में कहा जा सकता है कि मध्यकालीन आर्यभाषा मूल प्रकृति की एकरूपता के बावजूद स्थान भेद से प्रभावित हुई और उसके अनेक भेद हो गए। आचार्यों ने विभिन्न आधारों पर प्राकृत के अनेक भेद किए हैं भाषा वैज्ञानिक स्तर पर शौरसेनी, पैशाची, महाराष्ट्री, अर्द्धमागधी और मागधी पाँच भेद स्वीकार किए जा सकते

है। जो इस प्रकार हैं :-

शौरसेनी :- यह शूरसेन प्रदेश (वर्तमान मथुरा व उसके आस-पास का क्षेत्र) की भाषा थी संस्कृत प्रधान क्षेत्र की भाषा होने के कारण इस पर संस्कृत का प्रभाव अधिक है। अवन्ति व आभिरी इसके अन्य स्थानीय रूप कहे गए हैं। ऋ का इ में विकास, क्ष का क्ख में विकास संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति, संस्कृत की ओर झुकाव शौरसेनी की विशेषताएँ हैं।

पैशाची :- यह मुख्यतः पश्चिमोत्तर भारत में प्रयोग में ली जाती थी। कश्मीर के क्षेत्र में रहने वाली पिशाच जाति की भाषा होने के कारण यह पैशाची कहलायी इसका साहित्य नहीं के बराबर है। घोष वर्णों का अघोष में परिवर्तित होने की सामान्य प्रवृत्ति ष के स्थान पर श या स का प्रयोग ण के स्थान पर न का प्रयोग इसकी सामान्य विशेषता है।

महाराष्ट्री :- यह मूलतः महाराष्ट्र की भाषा थी कोमलता इसका विशेष गुण है। स्वरों के बीच आने वाले अल्पप्राण ~~स्पष्ट~~ स्पर्श व्यंजनों का लोप तथा महाप्राण स्पर्श व्यंजनों के स्थान पर केवल हकार अर्थात् महाप्राण का रह जाना ऊष्म ध्वनियों का ह में परिणित होना आदि इसकी महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

मागधी :- यह मगध की भाषा थी गौड़ी, ढक्की, शाबरी, चाण्डाली आदि इसकी सजातीय बोलियाँ थीं। स व ष के स्थान पर श का प्रयोग फिर र का ल में परिवर्तन, एकवचन में विसर्ग के स्थान पर ए का प्रयोग इसकी मौलिक विशेषताएँ हैं।

अर्द्धमागधी :- यह मागधी व शौरसेनी के बीच वाले प्रदेश की भाषा थी यह जैन साहित्य में प्रमुखता से प्रयुक्त हुई है। ष तथा श के स्थान पर स का प्रयोग, च वर्ग के स्थान पर त वर्ग का प्रयोग, तथा दन्त के स्थान पर त वर्ग का प्रयोग तथा दन्त के स्थान पर मूर्धन्य का प्रयोग, स्वरों के बीच के स्पर्श वर्णों के स्थान पर श्रुति का प्रयोग इनकी प्रमुख विशेषताएँ हैं।

इन सभी प्राकृतों की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

प्राकृत में व्यंजनांत शब्द नहीं हैं।

द्विवचन का प्रयोग नहीं मिलता।
न का ण में सामान्यतः प्रयोग मिलता है।
कारक रचना में विभक्तियों के स्थान पर स्वतन्त्र शब्दों को जोड़ने की प्रवृत्ति चल पड़ी है।
ध्वनियों में अनेक प्रकार के नवीन परिवर्तन व्यापक पैमाने पर होने लगे थे। जैसे- अल्पप्राण का महाप्राण में परिवर्तन, अघोष या घोष ध्वनियों का लोप व्यंजनों की व्यापक पैमाने पर समाप्ति इत्यादि।
तत्सम के स्थान पर तद्भव रूपों का प्रयोग।
व्याकरणिक ढाँचे जैसे काल, धातु, लिंग, वचन आदि में परिवर्तन। इस प्रकार संस्कृत की तुलना में इसमें सरलीकरण की प्रवृत्ति का विकास हुआ है।

अपभ्रंश :- आधुनिक आर्य भाषाओं के उदय के पूर्व आने वाली संधिकालीन भाषाएँ जैसे अवहट्ठ आदि तथा तृतीय प्राकृत काल की भाषाओं की गणना अपभ्रंश में होती है। उपर्युक्त विकास प्रक्रिया के अनुसार जब प्राकृत साहित्य भाषा बनकर लोकभाषा से पृथक् होकर जड़ हो गई तो भाषा के नैसर्गिक विकासवान रूप में परवर्तीकालिन अपभ्रंश का जन्म हुआ।

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग व्याकरण में या शिष्ट जनों के प्रयोग की तुलना में विकृत शब्दों के लिए तीसरी सदी से थी। (भरत के समय से) से ही मिलने लगता है मगर भाषा के अर्थ में अपभ्रंश का प्रयोग छठी शताब्दी में हेमचन्द द्वारा मिलता है इसी सदी में भामह तथा वलभी नरेश द्वितीय धरसेन द्वारा भाषा के रूप में संस्कृत व प्राकृत के साथ अपभ्रंश का उल्लेख मिलता है इससे स्पष्ट है कि संस्कृत व प्राकृत की तुलना में जनसामान्य की भाषा के शब्दों को अपभ्रष्ट या विभ्रष्ट कहा गया जो स्पष्ट ही जन भाषा के प्रति हीनता मूलक दृष्टिकोण था। किन्तु बाद में चलकर इन अपभ्रष्टों की सत्ता ही प्रधान हो गई और तब उसे छठी शताब्दी के पूर्व ही जनभाषा के अर्थ में स्वीकार कर लिया गया

गया जिस प्रकार अंग्रेजों ने हमारी भाषा को वर्नाक्यूलर नाम दिया उसी प्रकार उस समय के जातिवादी ब्राह्मणों ने साधारण जनभाषा को- लोक भाषा को- अपभ्रंश कहा था। आगे चलकर के अपभ्रंश शब्द के प्रयोग की व्याप्ति पर विचार करते हुए कहते हैं- "अपभ्रंश शब्द का प्रयोग देश विशेष या जाति विशेष की भाषा के लिए नहीं हुआ बल्कि वैदिक व लौकिक संस्कृत का भ्रष्ट रूप, साधारण प्राकृत का भ्रष्ट रूप, मागधी का भ्रष्ट रूप, शौरसेनी का भ्रष्ट रूप अथवा भाषाओं का भ्रष्ट रूप- अपभ्रंश के भाव में समाविष्ट हो जाता है"

तात्पर्य यह है कि छंदस, संस्कृत तथा प्राकृत की तुलना में जो शिष्टों के प्रयोग से भिन्न जनभाषा है वह अपभ्रंश कहलाए। अपभ्रंश के अनेक भेद माने गए- नामी साधु के अनुसार अपभ्रंश के उपनागर आभिर, और ग्राम्य तीन भेद हैं। मार्कण्डे के अनुसार नागर, उपनागर और ब्राचड़ तीन भेद हैं। पुरुषोत्तम के अनुसार नागर, ब्राचड़ उपनागर, पांचाल, ककेय, लाट और टक्क आदि अनेक भेदों का उल्लेख है। डॉ० नामवर सिंह सिर्फ पूर्वी और पश्चिमी दो भेद मानते हैं डॉ० भोलानाथ तिवारी के अनुसार शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्द्धमागधी ककेयी और ब्राचड़ या पैशाची इन छः अपभ्रंशों का अस्तित्व माना गया है।

अपभ्रंश के उपर्युक्त भेद स्थान पर आधारित हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे प्राकृत के भेद शौरसेनी का क्षेत्र उत्तर के पहाड़ी क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश पूर्वी पंजाब मध्यप्रदेश का पश्चिमी भाग राजस्थान तथा गुजरात था। महाराष्ट्री का क्षेत्र महाराष्ट्र है। मागधी का बिहार, बंगाल असम व उड़ीसा में बोली जाती थी। इसे पूर्वी अपभ्रंश भी कहते हैं। ब्राचड़ का क्षेत्र सिन्ध तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश का कुछ भाग था। ककेयी का क्षेत्र प्राचीन ककेय देश था जहाँ आज कल पंजाब तथा कश्मीर और पहाड़ी प्रदेश का कुछ भाग है। मागधी और शौरसेनी के बीच अर्द्धमागधी बोली जाती थी। भाषा की विकासात्मक प्रवृत्ति के अनुरूप अपभ्रंश में भी अनेक परिवर्तन हुए कुछ परिवर्तन जो प्राकृत काल में हो रहे थे यहाँ आकर तीव्र और स्पष्ट हो गए। अपभ्रंश की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:-

प्रकार बहुलता अपभ्रंश की सर्वप्रमुख प्रवृत्ति है।
इसमें संगीतात्मक के बदले बलात्मक स्वराघात की प्रवृत्ति अत्यधिक स्पष्ट है।
अंतिम स्वर के ह्रस्व होने की प्रवृत्ति प्रमुख है।
म का वँ, ष्ण का न्ह का प्रयोग क्ष का क्ख, ड, ह, न, र के स्थान पर ल का होना तथा व का ब में होना अपभ्रंश की ध्वनिगत विशेषताएँ हैं।
संस्कृत व प्राकृत की तुलना में नाम व धातु दोनों की कमी के कारण भाषा में सरलीकरण की स्थिति स्पष्ट है।
नपुंसकलिंग व द्विवचन लगभग समाप्त हो गए।
मध्यम व्यंजनों के लोप की प्रवृत्ति प्रचुर रूप में विकसित हो गई।
शब्द भंडार की दृष्टि से तद्भव और देशज शब्दों की बहुलता तथा तत्सम शब्दों की विरलता भी अपभ्रंश की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

आर्यभाषाओं के विकास की इसी पृष्ठभूमि में आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म होता है। डॉ० उदयनारायण तिवारी ने वर्णरत्नाकर कीर्तिलता, ~~ना~~ ज्ञानेश्वरी, चर्यापद आदि की भाषा को अपभ्रंश और आधुनिक आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी माना है। डॉ० भोलानाथ तिवारी यद्यपि संक्रान्तिकालिन भाषा की स्थिति को अनुपयुक्त मानते हैं फिर भी वे मध्यवर्ती भाषा के रूप में अवहट्ठ आदि का विवेचन करते हैं। इसी संक्रान्तिकालिन भाषा सेतु (कुल) के सहारे अपभ्रंशों के गर्भ से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का जन्म होता है।

हिन्दी और उसकी बोलियों का सामान्य परिचय

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को पहली बार वर्गीकृत करने का श्रेय डॉ० हार्नले को प्राप्त है। हार्नले के अनुसार आर्य भारत में दो बार आए उनके आगमन के कारण उनकी भाषा में भेद होना

...आधिक था इस भेद को स्पष्ट करने के लिए हार्नले ने बाद में आए आर्यों की भाषा को भीतरी वर्ग में रखा और उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया :- (1) पूर्वी गौड़ियान - इसके अन्तर्गत पूर्वी हिन्दी व बिहारी भाषाएँ, बंगला असमी उड़िया आते हैं और (2) पश्चिमी गौड़ियान में पश्चिमी हिन्दी राजस्थानी गुजराती सिन्धी पंजाबी आदि आते हैं अब हम हिन्दी की जो उपभाषाएँ हैं उनका परिचय जानेंगे। डॉ० हरदेव बाहरी ने हिन्दी के अन्तर्गत 5 उपभाषा वर्ग माने हैं :-

(1) पूर्वी हिन्दी (2) पश्चिमी हिन्दी (3) राजस्थानी हिन्दी (4) बिहारी हिन्दी (5) मध्य या पहाड़ी हिन्दी।

हिन्दी प्रदेश में ऐतिहासिक दृष्टि से 5 प्राकृतें थी - अपभ्रंश, शौरसेनी, अर्द्धमागधी, मागधी और खस। जिसे हम हिन्दी कहते हैं वह वस्तुतः में इन्हीं 5 प्राकृतों की उत्तराधिकारिणी विभाषाओं का संघ है। अपभ्रंश से राजस्थानी हिन्दी, शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी, अर्द्धमागधी से पूर्वी हिन्दी, मागधी से बिहारी हिन्दी और खस से पहाड़ी हिन्दी का विकास हुआ है।

पश्चिमी हिन्दी :- हिन्दी क्षेत्र के पश्चिमी भाग की उपभाषाओं के समूह के लिए डॉ० ग्रियर्सन ने पश्चिमी हिन्दी नाम दिया। क्षेत्र की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी का विस्तार पश्चिम में पंजाबी और राजस्थानी की सीमा से लेकर पूरब में अवधी और बघेली की सीमा तक, उत्तर में पहाड़ी हिन्दी की सीमा तक और दक्षिण में मराठी तक चला गया है। इसके अन्तर्गत खड़ी बोली (कौरवी), बांगरू, ब्रज भाषा, कन्नौजी और बुंदेली यह 5 भाषा मानी गई हैं। डॉ० भोलानाथ तिवारी इन पांच के अतिरिक्त निमाणी को भी इसी वर्ग के अन्तर्गत मानते हैं। इसके अतिरिक्त दक्षिण में बम्बई, मद्रास और हैदराबाद के आस-पास मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त दक्खिनी हिन्दी भी इसी वर्ग की भाषा है।

डॉ० हरदेव बाहरी इन सभी बोलियों को 2 वर्गों में बांटते हैं अकार बहुला और ओकार बहुला पहले वर्ग में बांगरू, खड़ी बोली और दक्खिनी हिन्दी आती है और दूसरे वर्ग में बुंदेली, कन्नौजी व ब्रज

भाषा। इस वर्ग की उपभाषाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :-

ब्रज भाषा :- डॉ० वाहरी के अनुसार यह औकार बहुला भाषा है जिसकी उत्पत्ति शौर सैनी अपभ्रंश से हुई है। ऐकार व औकार ब्रज भाषा की ऐसी ध्वनियाँ है जो उसकी प्रकृति को अलग करती है इसमें तो, जो, पे, मै की जगह तौ, जौ, पै, मै उच्चारित होता है। शब्दान्त आ की जगह औ पाया जाता है इसी आधार पर इसे औकार बहुला कहा गया है। कारक या परसर्ग इस प्रकार है जैसे - कर्ता ने - कर्ता नैं, कर्म को - कौं, कू, के, करण से - सौं, तें, तौं, संबंध को - कें, अधिकरण में - मांझ, पे, पर।

इसके अतिरिक्त काज, लागि, ढिग, नाई और पाछे, लों आदि भी परसर्गवत प्रयुक्त होते हैं विशेषण खड़ी बोली की तरह होते हैं लेकिन पुल्लिंग एकवचन रूप में भिन्नता होती है। सर्वनाम में को जगह हौं का प्रयोग उल्लेखनीय है। सहायक क्रिया में खड़ी बोली हूँ के लिए हौं और हो के लिए हौ का प्रयोग ध्यान देने योग्य है। ब्रज भाषा कोमल कान्त भाषा मानी जाती है इसका साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। कृष्ण काव्य का श्रेष्ठतम साहित्य ब्रज भाषा में ही उपलब्ध है। ब्रज भाषा गद्य के नमूने वार्ता साहित्य में मिलते हैं। इसके बोलने वालों की संख्या अनुमानतः डेढ़ करोड़ है।

बुंदेली :- यह बुन्देलखण्ड की भाषा है इसकी ब्रजभाषा से घनिष्ठता होते हुए भी कुछ भेद है जैसे - बुन्देली की संज्ञाएँ ब्रज भाषा की तरह इकारान्त और उकारान्त नहीं हैं। परसर्गों में, के लिए के अर्थ में के काजे या के लाने और को तथा का के अर्थ में खौ का प्रयोग विशिष्ट है। सहायक क्रिया होना के विभिन्न रूप चलते हैं किन्तु हकार लुप्त होकर अऊँ, आंय आदि रूप बच जाते हैं। इसके बोलने वाले लगभग एक करोड़ हैं और उसका क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है।

कन्नौजी :- यह लोकमत की दृष्टि से ही भिन्न भाषा है अन्यथा भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रज भाषा की एक बोली है। ध्वनियों में ब्रज भाषा ऐ औ की जगह ए ओ चलता है। यह पूर्व में कानपुर, दक्षिण में यमुना नदी और उत्तर में शाहजहाँपुर हरदोई पीली भीत तक इसका

क्षेत्र है। इसके बोलने वालों की संख्या 45 लाख के आस-पास है। शब्द के मध्य में आने वाले व का उच्चारण उ होता है। ऐ औ संयुक्त स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं परसर्गों में कर्म को की जगह का होगा, संबंध का की जगह कर, अधिकरण मा, मह स्थान अवधि से आकर मिल गए। इ उ सर्वनाम अवधि से आए हैं बहुवचन में हिन्दी लोग के स्थान पर हम का प्रयोग होता है।

हरियाणी :- यह वर्तमान हरियाणा प्रदेश की भाषा है इसे ग्रियर्सन ने बांगरू नाम दिया था जो करनाल जिले के आस-पास के क्षेत्र बांगर के नाम पर आधारित है इसके बोलने वालों की संख्या 30 से 35 लाख है खड़ी बोली हिन्दी से इसकी बहुत समानता है ध्वनियाँ भी दोनों में समान हैं परसर्गों में सम्प्रदान का अतिरिक्त परसर्ग ल्यौं और अधिकरण का मैंह या माँह विशिष्ट हैं सहायक क्रिया हैं की जगह से का प्रयोग मिलता है।

दक्खिनी :- यह उत्तर से जाकर बस जाने वाले लोगों की भाषा है जिसमें साहित्य प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है स्वरों में ह्रस्व की स्थिति व व्यंजनों में द्वित्व की स्थिति पंजाबी से इसकी समीपता सिद्ध करती है। ड़ की अपेक्षा ड का प्रयोग अधिक होता है परसर्गों ने कर्म को की जगह कूँ और सम्प्रदान के लिए की तरह के तईं का प्रयोग करण से की जगह सूँ का प्रयोग, सम्बन्ध का की जगह क्यौं व केरा का प्रयोग, अधिकरण में, पर की जगह मने या पो आदि चलते हैं सहायक क्रिया में अछे और का प्रयोग मिलता है इसकी अधिकतर प्रवृत्ति खड़ी बोली के समान है।

निमाड़ी :- यह मध्य प्रदेश के निमाड़ क्षेत्र की बोली है निमाड़ी खरगोन और खंडवा के बीच बोली जाती है इस पर मालवी, मराठी, बुंदेली, खानदेशी तथा भीली का प्रभाव है इसमें लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

पूर्वी हिन्दी :- प्राचीन कौशल राज की उत्तरी दक्षिणी क्षेत्र पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र है। आधुनिक दृष्टि से कानपुर से मिर्जापुर और नेपाल की सीमा पर पश्चिम पूर्व से दुर्ग बस्तर की सीमा तक क्षेत्र में पूर्वी हिन्दी बोली जाती है

इसके बोलने वालों की संख्या ढाई करोड़ से अधिक है इसमें कर्ता कारक के परसर्ग में ने का प्रयोग नहीं होता इसके अन्तर्गत 3 उपभाषाएँ आती हैं अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।

(1) अवधी :- पूर्वी हिन्दी वर्ग में इसका वही स्थान है जो पश्चिमी हिन्दी वर्ग में ब्रजभाषा या खड़ी बोली का है इसका क्षेत्र हरदोई जिले को छोड़कर सम्पूर्ण अवध प्रान्त है और इसके बोलने वालों की संख्या 1 करोड़ 40 लाख के लगभग है। अवधी में ण के स्थान पर न और श, ष की जगह स का प्रयोग होता है ऋ का उच्चारण रि की जगह होता है व का ~~प्रयोग~~ प्रयोग ब में होता है। सर्वनाम में आप के स्थान पर राउर का प्रयोग विशिष्ट है। क्रियाएँ प्रायः ब अन्त वाली होती हैं जैसे - कहब, खाब, प्याब, देखब।

(2) बघेली :- इसका क्षेत्र उत्तर में मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश की सीमा से लेकर दक्षिण में बाला घाट तक और पश्चिम में दमोह तथा बाँदा की पूर्वी सीमा से लेकर पूर्व में मिर्जापुर छोटा नागपुर और बिलासपुर की पश्चिमी सीमाओं तक फैला हुआ है इसके बोलने वालों के लोग 50 लाख से ऊपर हैं इसमें साहित्य अल्प मात्रा में प्राप्त होता है इसे अवधी की दक्षिणी शाखा कहना वैज्ञानिक है। व के स्थान पर ब का व्यापक प्रयोग, परसर्गों में कर्म सम्प्रदान में कहु तथा करण अपादान में तार का अतिरिक्त प्रयोग ध्यान देने योग्य है। अवधी में न की प्रधानता है जबकि बघेली में ह रूप की प्रधानता है।

(3) छत्तीसगढ़ी :- मध्य प्रदेश के उत्तर पूर्व में ~~पस~~ पलामू को छूते हुए भू-भाग से लेकर दक्षिण में ~~बस्तक~~ बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड को छूते हुए पूर्व में उड़ीसा की सीमा तक फैले भू-भाग को छत्तीसगढ़ कहा जाता है और इसी क्षेत्र की भाषा छत्तीसगढ़ी कहलाती है इसके बोलने वाले 70 लाख लोग हैं। इसमें साहित्य नहीं के बराबर मिलता है स का इसमें कहीं-2 छ हो जाता है विशेषणों व क्रियाओं के रूप अवधी से मिलते-जुलते हैं।

बिहारी हिन्दी :- ग्रियर्सन ने बिहार में बोली जाने वाली वर्तमान

आर्य भाषाओं को बिहारी नाम दिया है। बिहारी वर्ग के अन्तर्गत भोजपुरी, मैथिली और मगही का नाम आता है। ये भाषाएँ अकार बहुला हैं। बिहारी वर्ग की हिन्दी के अन्तर्गत वाज्जिका और अंगिका का भी उल्लेख किया जाता है। संज्ञा के सामान्य, दीर्घ और अनावश्यक तीनों रूप पूर्वी हिन्दी की तरह मिलते हैं। सर्वनामों में तुम्हारा के लिए तोहनी, हमारे का हमनी आदि प्रयोग विशिष्ट हैं। सहायक क्रियाएँ भिन्न-2 हैं, जैसे- भोजपुरी में बाटे, रहने को रहल, मगही में हल का प्रयोग व मैथिली में छिक आदि का प्रयोग विशिष्ट है।

भोजपुरी :- यह हिन्दी क्षेत्र की सबसे बड़ी उपभाषा है। इसका क्षेत्र बनारस, बलिया, गाजिपुर, गोरखपुर, देवरिया और आजमगढ़ जिले का पूर्व तथा मिर्जापुर, जौनपुर तथा बस्ती जिले के कुछ भाग उत्तर प्रदेश में तथा शाहाबाद, छपरा का पूरा जिला एवं चंपारण, राँची, पलामू के कुछ भाग तथा बिहार राज्य में फैला हुआ है, इसके बोलने वालों की संख्या पौने 2 करोड़ है। भोजपुरी में प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। भोजपुरी में शब्द के मध्य में आने वाले 'र' का र लुप्त हो जाता है। व इ बन जाता है। क्रियापदों में ल की प्रधानता है, जैसे-कहीं की जगह कहल और खायब आदि की जगह खायल आदि। सहायक क्रिया में बाटे का प्रयोग विशिष्ट है।

मगही :- मागधी अपभ्रंश से निकली यह आधुनिक भाषा है- पटना, गया, हजारीबाग, भागलपुर और मुंगेर का थोड़ा भाग इसके क्षेत्र में सम्मिलित है। यह भोजपुरी से समानता रखती है और राजधानी क्षेत्र की भाषा होने के कारण हिन्दी के व्यापक प्रभाव से भी अछूती नहीं है।

मैथिली :- मैथिली भाषा सम्पूर्ण दरभंगा जिला, सम्पूर्ण सहरसा जिला और पूर्णिया ~~जिला~~ मुंगेर और भागलपुर के कुछ क्षेत्र में बोली जाती है। इसके बोलने वालों की संख्या 1 करोड़ से कम है। इसमें प्राचीन व नवीन दोनों साहित्य उपलब्ध हैं। मैथिली में सभी शब्द स्वरान्त होते हैं। ए, ऐ, ओ, औ के ह्रस्व और दीर्घ दोनों उच्चारण मिलते हैं। साहित्यिक भाषा की प्रकृति तत्सम शब्दावली प्रधान है।

राजस्थानी हिन्दी :— यह मोर राजस्थान, मध्य प्रदेश के मालवा जनपद और सिन्ध के एक छोटे से भाग में बोली जाती है राजस्थानी में एक ओर वीरता और शृंगार प्रधान रासो, दूहा आदि काव्यग्रन्थों की प्रधानता है तो दूसरी ओर ख्यात, बात, वचनिकाओं में निबद्ध गद्य साहित्य की विशाल परम्परा है इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 2 करोड़ 15 लाख के आस-पास है इसकी उपभाषाओं में मारवाड़ी, जयपुरी (ढूंढाड़ी), मेवाड़ी, मालवी चार प्रधान हैं। यह ट वर्ग प्रधान भाषा है।

मारवाड़ी :— राजस्थानी वर्ग की सबसे प्रधान राजभाषा है शुद्ध मारवाड़ी का क्षेत्र जोधपुर का इलाका है इसकी 12 उपबोलियाँ हैं बोलने वालों की संख्या 18 लाख से ऊपर है।

मालवी :— उज्जैन के आस-पास के क्षेत्र का प्राचीन नाम मालवा है और उसी की भाषा मालवी कहलाती है उज्जैन, इन्दौर, देवास शुद्ध मालवी का क्षेत्र है बोलने वाले 50 लाख के ऊपर हैं मालवी में ण ध्वनि नहीं है ण की अपेक्षा ड का प्रयोग, के किन्हे, काई और के आदि विशिष्ट हैं। सर्वनाम हैं।

मेवाती :— यह अलवर, भरतपुर के उत्तर पश्चिम तथा गुड़गाँव के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है सर्वनाम हरियाणवी की तरह है।

जयपुरी :— यह जयपुर क्षेत्र की बोली है। बूंदी व कोटा में बोली जाने वाली हाड़ौती इसी की शाखा है।

पहाड़ी हिन्दी :— पहाड़ी वर्ग की 3 शाखाएँ हैं। पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और नेपाली इसके अन्तर्गत मध्य पहाड़ी की दो उपभाषाएँ आती हैं — कुमाऊँनी और गढ़वाली।

कुमाऊँनी :— इसका क्षेत्र नैनीताल, ~~अल्मोड़ा~~ अल्मोड़ा और पिथौड़ागढ़ है ~~जन्म~~ जनसंख्या 9 लाख है राजस्थानी व खड़ी बोली का इस पर प्रभाव इस पर देखने को मिलता है इसमें ए, ओ के स्थान पर या, वा हो जाते हैं। पुल्लिंग एकवचन रूप ओकारान्त होते हैं ने के स्थान पर ले और को के स्थान पर कणि परसर्ग इसकी अपनी विशेषता है।

गढ़वाली :— इसके क्षेत्र में गढ़वाल टिहरी और चमोली जिला तथा

उत्तर काशी का दक्षिणी भाग सम्मिलित है। इसमें अनुनासिकता की प्रवृत्ति बहुत है। सर्वनाम ब्रज भाषा से मिलते-जुलते हैं। शेष में राजस्थानी से समानता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी की अनेक उपभाषाएँ हैं और उन भाषाओं के वर्ग में अनेक बोलियाँ हैं और क्षेत्रीय दृष्टि से सभी का अपना विशिष्ट महत्व है।